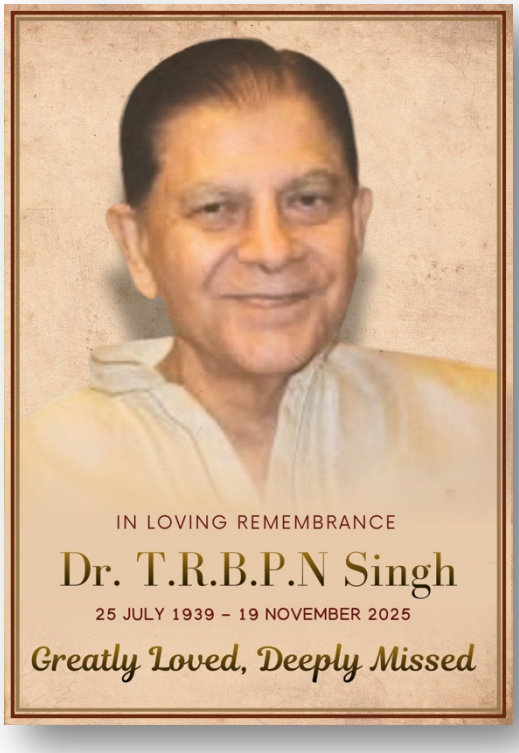


किसी का व्यक्तित्व शब्दों का मोहताज नहीं होता। एक पूर्ण रूप से जीयी हुई ज़िंदगी अपने आप में एक पूरी किताब होती है, जिसके पाठक हम सब होते हैं। किसी ने उसके आरम्भ को देखा, किसी ने उसके मध्य को, और किसी ने उसके अंतिम अध्याय को। उस किताब में धूप भी होती है, छाँव भी होती है; दिन भी होता है, रात भी होती है; संघर्ष भी होते हैं और सफलताएँ भी। तभी तो उसमें जीवन के सारे अनुभूत समाए होते हैं।

शायद इसलिए ज़िंदगी कभी पूरी नहीं होती। ज़िंदगी हरदम आधी-अधूरी ही रहती है; सम्पूर्णता तो केवल एक खोज है। इतिहास भी कहीं न कहीं एक बनावट है, जो किसी जीवन को सजा-सँवार तो सकता है, पर उसे पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकता। जीवंत यदि कुछ है, सत्य यदि कुछ है, तो वह केवल एहसास है। ऐसी ही एक धरोहर और विरासत के बारे में आज मैं आप सबसे कुछ कहना चाहता हूँ। ऐसी विरासत जिसे शब्दों में बाँधना संभव नहीं, जिसे केवल अनुभूत किया जा सकता है।

हमारे पिताजी, विजय बाबू—जिन्हें परिवार के बड़े-बुज़ुर्ग मोहन जी कहकर पुकारते थे, एक बहुत ही साधारण व्यक्तित्व में असाधारण प्रतिभा के धनी थे। पाँच फीट छह इंच का शरीर, गोरा व्यक्तित्व, ललाट पर अद्भुत तेज, चेहरे पर अटूट विश्वास और हमेशा बनी रहने वाली मुस्कान। उनका पूरा नाम था डॉ. ठाकुर राम रण विजय प्रताप नारायण सिंह था। नाम जितना बड़ा था, उससे कहीं बड़े उनके कर्म थे।

उनका जन्म 25 जुलाई 1939 को गोपालगंज जिले के देवापुर गाँव में हुआ। उनके पिता श्री राधा रमण सिंह भारतीय पुलिस सेवा में थे और माता श्रीमती अनारवती देवी एक साधारण गृहिणी थीं। नौ भाई-बहनों में वे सबसे बड़े थे। जिम्मेदारियाँ बचपन से ही उनके साथ चलती रहीं।

वे बचपन से ही मेधावी और परिश्रमी थे। 1955 में एम.एल.ए. अकादमी, दरभंगा से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और फिर आई.एस.सी. की पढ़ाई के लिए सेंट कोलंबस कॉलेज, हजारीबाग आ गए। यहीं की एक घटना वे हम बच्चों को अक्सर सुनाया करते थे, विशेषकर तब जब हम किसी असफलता से निराश हो जाते थे। उन्होंने एम.बी.बी.एस. की प्रवेश परीक्षा में पूरे राज्य में छठा स्थान प्राप्त किया था और पटना मेडिकल कॉलेज में उनका प्रवेश लगभग निश्चित था। लेकिन उसी वर्ष आई.एस.सी. के अंतिम परिणाम में उन्हें केमिस्ट्री प्रैक्टिकल में अनुत्तीर्ण घोषित कर दिया गया। आज हमारे साथ ऐसा हो जाए तो शायद हम टूट जाएँ। लेकिन उन्होंने हार नहीं मानी। अगले वर्ष फिर से आई.एस.सी. की परीक्षा दी, उत्तीर्ण हुए, दोबारा प्रवेश परीक्षा पास की और अंततः पटना मेडिकल कॉलेज पहुँचे। उन्होंने हमें सिखाया कि असफलता मंज़िल नहीं होती; यदि मन में विश्वास हो तो वही रास्ता फिर सफलता तक ले जाता है। पटना मेडिकल कॉलेज से उन्होंने 1963 बैच में एम.बी.बी.एस. की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद एम.डी. (जनरल मेडिसिन) किया तथा एम.सी.सी.पी. (यू.एस.ए.) की उपाधि भी प्राप्त की।

लेकिन उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि केवल अपनी डिग्रियाँ नहीं थीं। पटना मेडिकल कॉलेज में उनका सबसे बड़ा योगदान था डी.टी.सी.डी. (Diploma in TB and Chest Diseases) पाठ्यक्रम की शुरुआत कराना। इस प्रसंग को वे बड़े गर्व और आनंद से सुनाया करते थे। कहते थे कि यह एक अद्भुत संयोग है कि इस डिग्री की शुरुआत कराने

वालों में भी वे थे, इसी पाठ्यक्रम के शिक्षक भी रहे और विद्यार्थी के रूप में इसकी पहली डिग्री प्राप्त करने वालों में भी उनका नाम था। उनके अथक प्रयासों से यह पाठ्यक्रम प्रारम्भ हुआ और बाद में राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त कर सका। टीबी जैसी गंभीर बीमारी के क्षेत्र में उनके शोध और सेवाओं के लिए वर्ष 2016 में एम्स, पटना ने उन्हें विशिष्ट सम्मान से भी सम्मानित किया। उन्हें इंडियन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा आजीवन उत्कृष्ट योगदान के लिए डॉ. ए. के. एन. सिन्हा स्मृति राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। साथ ही, दैनिक जागरण द्वारा बिहार के स्वास्थ्य क्षेत्र में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए सर्टिफिकेट ऑफ एक्सीलेंस प्रदान कर सम्मानित किया गया।

लेकिन यदि आप मुझसे पूछें कि उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि क्या थी, तो मैं कहूँगा—उनका डॉक्टर होना नहीं, उनका इंसान होना। 1993 में जब मैं कलकत्ता से वापस आया, तब उनकी निजी प्रैक्टिस अपने शिखर पर थी। प्रतिदिन लगभग सौ मरीज देखते थे। उस समय मेरे अंदर नया-नया व्यावसायिक दृष्टिकोण था। मैंने उनसे कहा— "आप सारी जाँचें और एक्स-रे बाहर भेजते हैं। यदि इन्हें अपने क्लिनिक में ही शुरू कर दें तो आमदनी कई गुना बढ़ जाएगी।" उन्होंने मुझे बड़े स्नेह से समझाया— "बेटा, मेरी मेहनत से कई और घरों का चूल्हा जलता है। मैं अपनी आय तो बढ़ा लूँगा, लेकिन जिन रोगियों की सेवा का प्रण लेकर मैंने डॉक्टरी शुरू की थी, उनके लिए जो समय है, वह मुझसे छिन जाएगा। मेरे लिए डॉक्टरी का धर्म पैसा कमाना नहीं, मानवता की सेवा करना है।" उस दिन मैंने पहली बार समझा कि सेवा और व्यवसाय में क्या अंतर होता है। उनके जीवन का एक और प्रसंग मेरे मन में हमेशा के लिए अंकित है। मैं रोज़ सुबह छह बजे दस किलोमीटर दूर बॉटनिकल गार्डन टहलने जाया करता था। मैंने उनसे आग्रह किया कि वे भी मेरे साथ चलें। लेकिन उन्होंने मुस्कुराकर कहा— "मेरा गरीब मरीज सुबह छह बजे दूर-दराज़ से आकर लाइन में खड़ा हो जाता है। उसे खाली पेट जाँच करानी होती है। यदि मैं देर से बैठूँगा तो उसकी जाँच देर से होगी, रिपोर्ट देर से आएगी और शायद उसे एक दिन और पटना रुकना पड़े।" वे प्रतिदिन सात से साढ़े सात बजे तक स्नान कर मरीज देखने बैठ जाते थे। किसी डॉक्टर का अपने मरीज के लिए इस स्तर तक सोचना असाधारण बात है।शायद उन्हीं दुआओं का परिणाम था कि भगवान ने उन्हें दूसरी ज़िंदगी दी।

2016 में वे अचानक अत्यंत गंभीर रूप से बीमार पड़े। एयर एम्बुलेंस से उन्हें मुंबई के लीलावती अस्पताल ले जाया गया। चार महीने तक वे वेंटिलेटर पर रहे। मैंने अपनी पूरी ज़िंदगी में किसी मरीज को चार महीने वेंटिलेटर पर रहकर वापस सामान्य जीवन में लौटते नहीं देखा था। लेकिन अदम्य इच्छाशक्ति, अटूट विश्वास और हजारों लोगों की प्रार्थनाओं ने वह असंभव भी संभव कर दिया। लगभग छह महीने अस्पताल में रहने के बाद वे घर लौटे। एक वर्ष मुंबई में रहने के पश्चात जब वे पटना वापस आए तो सबसे पहले उन्हें किस बात की चिंता थी? अपनी बीमारी की नहीं... अपने मरीजों की। उन्होंने फिर से क्लिनिक शुरू किया। लोगों का उन पर विश्वास इतना था कि कुछ ही दिनों में क्लिनिक के बाहर फिर वही भीड़ लगने लगी। मानो भगवान ने उन्हें अपने लिए नहीं, अपने मरीजों के लिए नौ वर्ष का दूसरा जीवन दिया हो। उनकी दयालुता केवल मरीजों तक सीमित नहीं थी। उनके कम्पाउंडर श्याम और बनवारी के निधन के बाद वे उनके परिवारों को हर महीने उनकी आधी तनख्वाह भेजते रहे। निजी क्षेत्र में भी कोई व्यक्ति अपने कर्मचारियों को इस प्रकार की "पेंशन" देता रहे—यह अपने आप में अद्वितीय उदाहरण है। वर्ष 2025 तक यह सहायता निरंतर चलती रही। उनके अन्य सहयोगी—गोपाल, शिवकुमार और बबलू—उनके बच्चों की पढ़ाई, शादी और घर बनाने तक में उन्होंने हर संभव सहायता की। जब भी किसी अपने को ज़रूरत पड़ी, वे बिना बताए उसके साथ खड़े हो गए। उनके जाने के बाद मुझे एक और घटना का पता चला। उनके हजाम ने बताया कि लगभग दस वर्ष पहले पिताजी ने उसे नई दुकान खोलने के लिए पचास हजार रुपये दिए थे और कभी वापस नहीं माँगे। इतना ही नहीं, उन्होंने इसका उल्लेख भी घर में कभी नहीं किया। यही उनका स्वभाव था। मदद करो...और भूल जाओ।

उनकी उम्र मात्र उनतालीस वर्ष की थी जब उनके पिता का निधन हो गया। नौ भाई-बहनों की पूरी जिम्मेदारी उनके कंधों पर आ गई। उसी समय उन्हें सऊदी अरब से बहुत अच्छे वेतन वाली नौकरी का प्रस्ताव मिला। लेकिन उन्होंने परिवार को चुना। अपने सपनों से पहले अपने लोगों को रखा। उनके इसी त्याग और परिश्रम का परिणाम है कि आज

उनके सभी भाई-बहन शिक्षित, आत्मनिर्भर और अपने-अपने जीवन में सफल हैं। उनके जीवन का वृत्तचित्र खींचना आसान नहीं है। क्योंकि उन्हें ज़िंदगी परोसकर नहीं मिली थी। उन्होंने हर उपलब्धि संघर्ष से अर्जित की थी। लेकिन जीवन के अंत तक सफलता उनके पीछे चलती रही, क्योंकि उन्होंने हमेशा कर्म को सबसे ऊपर रखा। आज भी जब मैं उनके व्यक्तित्व के बारे में सोचता हूँ, तो समझ नहीं पाता कि उनका सबसे बड़ा धर्म कौन-सा था—एक पुत्र का, एक पिता का, एक पति का, एक भाई का, एक मित्र का, एक शिक्षक का या एक चिकित्सक का। शायद यही उनकी सबसे बड़ी पहचान थी कि उन्होंने हर भूमिका पूरी निष्ठा से निभाई। उन्होंने न जाने कितनी ज़िंदगियों को छुआ, सँवारा, संभाला और आगे बढ़ाया।

19 नवम्बर 2025 को ग्रेटर नोएडा में, अपने पूरे परिवार के बीच, उन्होंने अपनी अंतिम साँस ली। आज उनका विशाल परिवार—उनके भाई-बहन, उनके बच्चे, नाती-पोते—सभी उनके दिए हुए संस्कारों की विरासत को आगे बढ़ा रहे हैं। वे हमें धन-संपत्ति से कहीं बड़ी विरासत देकर गए हैं। उन्होंने हमें सिखाया कि जीवन का उद्देश्य केवल सफल होना नहीं है। जीवन का उद्देश्य है— मानवीय मूल्यों पर चलना तथा अपने धर्म का निष्ठापूर्वक निर्वहन करना। पैसा, पद, सम्मान, उपाधियाँ—ये सब समय के साथ पीछे छूट जाते हैं। लेकिन जिस व्यक्ति ने मानवता की सेवा की हो, वह कभी नहीं जाता। वह लोगों की प्रार्थनाओं में जीवित रहता है। उनकी स्मृतियों में जीवित रहता है और सबसे बढ़कर—उनके जीवन से प्रेरणा लेने वालों के कर्मों में जीवित रहता है।

आज भी जब उनकी स्मृतियाँ मन को स्पर्श करती हैं, तो शब्द अपने आप कविता का रूप ले लेते हैं। उन्हीं के प्रति अपनी श्रद्धांजलि स्वरूप कुछ पंक्तियाँ...

कर्तव्यपरायण व्यक्तित्व जिसका,
विशाल हृदय, तेजस्वी ललाट।
मुख पर अरुण आभा लिए,
विजय पताका शील संग चहुँ ओर फहराए।

त्याग, तपस्या और करुणा की गहराई में,
देता हर परिस्थिति में सही दिशा-निर्देश।
न जाने कितनों के जीवन का
आदर्श स्वरूप बनकर रहा।

सबका दुःख दूर किए,
बिना रुके, बिना थके चलते रहे निज वेग से।
संजीवनी बन उपचार किया,
हर वर्ग का कल्याण किया।

यही तो व्यक्तित्व है निराला,
जिसने हमें भी संभाला।
जो अदृश्य होते हुए भी सदृश्य है,
न होते हुए भी होने का प्रबल संबल है।

सदैव उनका सादा व्यक्तित्व
प्रेरणा देता रहा।
कर्मठता का यह पीयूष-स्रोत
मार्ग प्रशस्त करता रहा—अनवरत, अबाध।

हे प्रभु! देना हमें सदा यही आशीष—
उनकी कर्मठता का अंश पाकर बनें प्रयत्नशील।
जो मंगलकारी हो, हितकारी हो,
और उनके ऊँचे आदर्शों के पथ पर
हम सदा अग्रसर रह सकें ।।

पुत्र – श्री कुमार संजय (IRS)
सेवानिवृत्त मुख्य आयकर आयुक्त (आयकर विभाग)